

भक्तिकाल में स्त्री

विजय

पी०एच०डी० शोधार्थी, सिंघानिया यूनिवर्सिटी, राजस्थान, भारत ।

प्रस्तावना

मानव समाज स्त्री और पुरुष के योगदान का निर्माण है, जिसे पृथक् रूप से परिभाषित करना अत्यंत कठिन है। इतिहास के प्रारंभिक रूप में मातृ सत्तात्मक समाज था, नारी का परिवार में प्रमुख एवं शीर्षस्थ स्थान था। बस्ती बनाकर रहने तथा खेती का प्रारंभ भी नारी की ही देन रही। अतः पुरुष को सभ्यता से संस्कृति की ओर ले जाने का मुख्य बीड़ा नारी का ही रहा जो उसने बखूबी पूरा भी किया। किन्तु कालान्तर में कुछ आधारों पर समाज द्वारा स्त्री का योगदान पुरुष की अपेक्षा कम करके आंका जाने लगा और सामाजिक व्यवस्था मातृसत्तात्मक से पितृसत्तात्मक में परिवर्तित होने लगी तथा स्त्री को समाज के हाशिए पर डाल दिया गया। यद्यपि पुरातन काल में अनेक विदुषी नारियों यथा – गार्गी, घोसा, अपाला, जुहू, उषा, अदिति, विश्ववारा, गोधा, इला, सरस्वती, सरमा, रोमशा, लोपामुद्रा, श्रद्धा, सूर्या, शची, सिक्ता, शक्ति आदि ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय देकर दार्शनिक चिन्तन के विकास में यथोचित योगदान दिया। तथापि वैदिक ऋचाओं में पितृसत्तात्मक समाज की मानसिकता का परिचय इस बात से मिल जाता है कि वहाँ भूमि और पशुओं के साथ पुत्रों की कामना की गई है पुत्रियों की नहीं। वैदिक काल से होता हुआ समाज जब उत्तर वैदिक काल तक पहुँचा तो नारी की दशा लिंग-भेद के आधार पर स्थापित कर पितृसत्तात्मक समाज स्वयं को गौरवान्वित महसूस कर रहा था परंतु सफलता की इस परिभाषा को गढ़ने के अधिकार से फूला न समाने वाला पुरुष कहीं भेदभाव की इस नीति में मानवता का त्याग कर रहा था। लवीसत्रास का इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय कथन है – “सत्ता चाहे सार्वजनिक हो या सामाजिक, वह हमेशा पुरुष के हाथ में रही। स्त्री हमेशा अलगाव में रही। उसे यदि पुरुष ने दैवी रूप दिया, तो इतना ऊँचा उठा दिया, निरपेक्ष रूप में इतनी पूजा बना दिया कि मानव जीवन उसे प्राप्य ही नहीं हो सका।”¹

इतिहास के इन्हीं पन्नों के पलटते-पलटते वर्ण-भेद की नीति का भी खुलासा हुआ और समाज में स्त्री की स्थिति का भी। स्त्री होने के लिंगगत अपराध के कारण जहाँ भारतीय संस्कृति की प्रथम कानूनी नियमावली कही जाने वाली ‘मनु संहिता’ ने उसके बचे-खुचे अधिकार भी छीन लिये तो वहीं बहु-पत्नी व्यवस्था तथा अनुलोम विवाह ने स्त्री को उपभोग की वस्तु बना दिया। लिंग-भेद के आधार की इसी खाई ने जहाँ घर की ड्योढ़ी को स्त्री की लक्ष्मण-रेखा बना दिया, वहीं पुरुष समाज के पाँव की जूती भी। अति तो तब हुई जब इस लक्ष्मण रेखा को लाँघने वाली स्वयं भगवान राम की स्त्री सीता भी समाज के लाँछन एवं पति के त्याग से न बच सकी, तो फिर साधारण स्त्री की तो ओकात ही क्या थी? इतना ही नहीं जो लोग उसे दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती के रूप में स्थापित कर पूज रहे थे वे ही दूसरी ओर धार्मिक आख्यानों द्वारा पुरुष समाज के बंधनों को तोड़ने वाली नारी की नियति निर्धारण

करने की सराहना भी कर रहे थे जहाँ उसे द्यूतक्रीड़ा में दौंव पर लगाने, नियोग के लिए विवश करने से लेकर उसके वस्त्र हरण तक को समर्थन प्राप्त था। जिससे यह तो स्पष्ट हो ही गया था कि संस्कृति के विकास के साथ ही साथ पुरुष की नीयत ने नारी की नियति भी तय कर दी थी। यही कारण रहा कि अगर यह ‘तथागथित वस्तु’ अपनी मूकता का परित्याग कर शब्दों को खोजने लगती तो पुरुष प्रताड़ना का शिकार स्वाभाविक ही बनती। ऐसे में मध्यकाल में वैचारिक परिवर्तन को लेकर चलने वाला भक्ति आंदोलन हताश एवं उपेक्षित वर्ग की आवाज बनकर उभरा और हाशिए पर पड़े वर्ग की पहचान बना। इसी हाशिए से निकलकर महिलाएँ भी अपनी पहचान के लिए आगे आईं जिन्होंने एक बार पुनः यह सिद्ध कर दिया कि उपेक्षा, अन्याय एवं शोषण के भंवर से निकलने में पितृसत्तात्मक समाज अब उन्हें अधिक देर तक न रोक पाएगा।

मध्यकालीन समाज में भक्ति आंदोलन का आरंभ ही वर्ण व्यवस्था और स्त्री-पुरुष के भेदभाव को तोड़ने वाला था। मध्य युग में जर-जोरु-जमीन के लिए होनेवाले युद्धों में जहाँ स्त्री विजयी पक्ष को जीती हुई वस्तु के रूप में प्राप्त होती तो पराजित पक्ष के साथ सती भी होती। दोनों ही सूरतों में स्त्री की इच्छा-अनिच्छा अनिवार्य न थी क्योंकि संस्कृति के टेकेदार उसके विरोध को मानने को भी तैयार न थे। ऐसे में भक्तिकाल की विधवा मीरा ने जिस विरोध की मशाल जलाई वह उस समय की परिस्थितियों में एक स्त्री की भीरुता एवं निडरता को पुष्ट करता है क्योंकि सती न होकर भक्त बन जाना उस समय के समाज में स्त्री के लिए निषेध था। अतः भक्तितन मीरा का ऐसा आचरण पुरुष प्रधान समाज के लिए चुनौती बना। मीरा का यह कथन ‘मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई’² पितृसत्तात्मक समाज द्वारा स्त्री के लिए बनाए गए बंधनों की अवहेलना थी। इतना ही नहीं मीराबाई ने उन सभी वर्जनाओं का भी उल्लंघन किया जिन्हें उच्च वर्ग और तथाकथित सभ्य समाज अपनी पहचान के लिए अनिवार्य समझता है। वे कहती हैं –

राजा बरजै, राणी बरजै, बरजै सब परिवारी, कुँवर पाटवी सो भी बरजै और सहेल्यां सारी।

साधन के ढिंंग बैठि बैठि के लाज गमाई सारी, नित-प्रति उटि नीच घर जाओ, कुल को लगाओ गारी।³

परंतु उनका यह विद्रोह अनेक अबला नारियों के लिए पथ प्रदर्शक भी था। इसी कारण मीरा के विषय में डॉ. बलदेव वंशी का कथन एकदम सटीक ठहरता है, “मीरा उफनती आवेगी बरसाती नदी की भाँति वर्जनाओं की चट्टानें तोड़ती, राह बनाती अपने गंतव्य की ओर बेरोक बढ़ती चली गई। वर्जनाओं के टूटने की झंकार से मीरा की कविता उत्पन्न हुई। वह हर स्तर पर लगातार वर्जनाओं को

¹ सिमोन द बोउवार, स्त्री उपेक्षिता, पृ.54

² उद्धृत प्रो. पेमाराम, राजस्थान में भक्ति आंदोलन, पृ.194

³ उद्धृत, डॉ. बलदेव वंशी, भारतीय नारी संत परंपरा, पृ.72

क्रम-क्रम तोड़ती चली गई। राजपरिवार की, रनिवासे की, सामंती मूल्यों की, पुरुष प्रधान समाज द्वारा थोपे नियमों की कितनी ही वर्जनाओं की श्रृंखलाएँ मीरा ने तोड़ फेंकी और मुक्त हो गयी। इतना ही नहीं, तत्कालीन धर्म-सम्प्रदाय की वर्जनाओं को भी अस्वीकार कर दिया, तभी मीरा, मीरा बनी।⁴

मध्यकालीन समाज में विवाहित अथवा विधवा स्त्री का पर-पुरुष से प्रेम करना और घर-बार छोड़कर दर-दर भटकना पितृसत्तात्मक समाज को कतई स्वीकार न था जिसको गलत साबित करने में भक्तिकाल की अनेक महिलाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

हिन्दी साहित्य के पन्नों में 'भक्तिकाल' ऐसा काल रहा जिसमें अनेक प्रथाओं-कुप्रथाओं का खंडन कर समाज ने उन्हें अस्वीकृत किया। इन्हीं कुप्रथाओं में से एक अस्पृश्यता एवं जातिवाद की रही। अस्पृश्य समझी जानेवाली जातियों को समाज से बहिष्कृत कर उन्हें हाशिए पर रख कर ब्राह्मण वर्ग ने 'समाज में जातिवाद को लागू किया और साथ ही पूरे नारी वर्ग, चाहे वह किसी भी जाति वर्ण या संप्रदाय से संबंधित हो, को वेद ज्ञान से वंचित कर दिया। छुआछूत ने जहाँ श्रमिक वर्ग पर कहर ढा रखा था वहीं इस वर्ग की महिलाएँ तो दुगुनी पीड़ित थीं - एक तो अस्पृश्यता का बोझ और उस पर लिंग भेद की पीड़ा। ऐसे में भक्तिकाल में महिला संतों ने एक पग आगे बढ़कर अपने-अपने समाजों के पुरुष-वर्ग के विरुद्ध नारी आत्मा की उत्पीड़ना और प्रताड़ना का मुँह तोड़ जवाब दिया। कश्मीर की लल्लेश्वरी से लेकर तमिल की आलवार संत गोदा आण्डाल ने इस दिशा में पहल कर न केवल पितृसत्तात्मक समाज के समक्ष अपने अस्तित्व का परिचय दिया अपितु जातिवाद के बंधनों को तोड़कर धर्म में प्रवेश कर सवर्णों की नियमावली का उल्लंघन भी किया।

लल्लद देवी के विषय में परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं, "कश्मीर में एक स्त्री जिसका नाम लालदे अथवा लल्ला था, उच्च कोटि की शैव साधुनी के रूप में प्रसिद्ध है। वह ढेढवा मेहतर जाति की स्त्री थी, जो सामाजिक दृष्टि से निम्न स्तर वाले परिवार की होकर भी उच्च विचार रखती थी। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि वे शैव संप्रदाय का अनुसरण करने वाली एक भ्रमणशील भंगिन थी किंतु धार्मिक मतभेदों से बहुत दूर रहा करती थीं और इनके सिद्धांत अत्यंत सरल और समन्वयात्मक थे।⁵ इसी प्रकार गोदा आण्डाल का परिचय देते हुए किशोर कुणाल लिखते हैं, "बारह आलवार संतों से आण्डाल ही एकमात्र नारी आलवार संत हैं। इनका चरित अद्भुत है। बचपन का नाम गोदा था, जो संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ है - 'गो' यानी वाणी या संपत्ति देने वाली। गोदा का तमिल रूप गोदे है, जिसका अर्थ है पुष्पमाला। वटपत्रशायी कृष्ण भगवान् इनकी पहनी पुष्पमालाओं को बहुत प्रीति से धारण करते थे, अतः इस नाम की सार्थकता है।"⁶

तमिलनाडु की प्रथम नारी संत कारैकाल अम्मैयार निर्गुण निराकार शिव की आराधिका रही तो आण्डाल और मीरा कृष्ण की साधिका, मराठी भाषी प्रथम महिला संत महदायिसा भी कृष्ण भक्त ही रही। संत वेणास्वामी रामभक्त हनुमान की सेविका बनी तो आन्ध्र प्रदेश की आतुकूरि मोल्ला राम की अनन्य भक्तिन। देखा जाए तो भक्तिकाल की इन संत महिलाओं ने ईश्वर के जिस भी रूप की भक्ति की हो, वह समाज की मानसिकता को बदलने के लिए पर्याप्त थी।

अतः मध्यकाल में स्त्री-अधिकारों एवं सम्मान की लड़ाई में इन समस्त संत महिलाओं का अतुल्य योगदान रहा जिन्होंने स्त्री होते हुए भी हर विपत्ति का डटकर सामना किया। इनमें उल्लिखित महिला संतों के अतिरिक्त जो संत महिलाएँ प्रमुख रहीं वे

हैं-अक्कामहादेवी, बावरी साहिबा, जनाबाई, सहजोबाई, कारैकाल अम्मैयार, महदम्बा, वेणास्वामी, मुक्तबाई, सोयराबाई, निर्मलाबाई, कान्होपात्रा, जातुकूरि मोल्ला, हब्बा खातून, बहिणाबाई, संत उमा, ताजबीबी, हेलवन कट्टै गिरियम्मा, दयाबाई, बहबलबाई, कोकिलाबाई, नूपीबाई, हसीना, हमीदा, संत पार्वती, फूलीबाई, खुशालाबाई, जनबेगम, बयाबाई, होनम्मा, रतनीबाई आदि। अंततः पुरुष प्रधान समाज के बंधनों को अस्वीकार कर अपनी राह स्वयं बनाने वाली इन स्त्रियों के विषय में डॉ. बलदेव वंशी का कथन एकदम सटीक ठहरता है कि -

'कैसी है सृष्टि की परंपरा कैसी है सृजन की परंपरा की नदी भी अपने लिए दो किनारे बनाती है तभी बह पाती है।'⁷

संदर्भ ग्रंथ

1. कुणाल किशोर, दलित देवो भव (द्वितीय भाग), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण विभाग मंत्रालय, भारत सरकार।
2. चतुर्वेदी परशुराम, उत्तरी भारत की संत परंपरा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्रथमा संस्करण 2008 वि.।
3. वंशी बलदेव, भारतीय नारी संत परंपरा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011।
4. द बोडवार सिमोन, स्त्री उपेक्षिता, हिन्दी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004।

⁴ बलदेव वंशी, भारतीय नारी : संत परंपरा, पृ.75

⁵ परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ.0101

⁶ दलित देवो भव (भाग-2), किशोर कुणाल, पृ.233

⁷ बलदेव वंशी, भारतीय नारी : संत परंपरा, पृ.18